"चम्पारण सत्याग्रह की रचनात्मक ज्योति" एक विश्लेषण

सनोज कुमार चौधरी
(शोधार्थी)
स्नातकोत्तर गांधी विचार विभाग
ति0 मां0 भा0 वि0, भागलपुर।

पं0 मदनमोहन मालवीय की सलाह मान पंडित राजकुमार शुक्ल गाँधीजी के पास गये। महामना ने उनके दक्षिण अफ्रिकी संघषों के बारे में बतलाते हुए कहा था कि किसी तरह यह व्यक्ति चम्पारण जाने को तैयार हो जाए तो तुम्हें मुक्ति दिलाकर ही दम लेगा।

वर्ष 1917 में दो ऐसी घटनाएँ हुई जिन्होंने विश्व में भारी परिवर्त्तन के द्वार खोल दिए। पहली घटना थी 07 नम्बर की रूसी क्रांति और दूसरी थी चम्पारण में गाँधीजी का सत्याग्रह। आइए, हम इस दूसरी एतिहासिक घटना के कतिपय रोचक प्रसंगों को विस्तारपूर्वक देखें।

26–30 दिसम्बर 1916 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का 31 वॉ वार्षिक अधिवेशन लखनऊ में हुआ था जो पिछले अन्य अधिवेशनों से अलग ही नहीं, अनोखा था। देश के हर कोने कसबों से सुशिक्षित लोग आये थे।

इस सभा के सभापति अम्बिकाचरण मजुमदार थे। बिहार से इस अधिवेशन में राजेन्द्र बाबू, ब्रजकिशोर प्रसाद, एनी बेसेन्ट, मजहरूलहक, जिन्ना, बाल गंगाधर तिलक, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, पोलक इत्यादि लगभग 2300 प्रतिनिधि आये थे। जिसमें बिहार के राजकुमार शुक्ल भी थे। पहली बार एक अर्धशिक्षित ठेठ देहाती ने कांग्रेस के मंच से भाषण किया और पड़ोसी बिहार के चम्पारण जिले के निलहे साहबों के, शोषण और उत्पीड़न की रोंगटे खड़ी करने वाली कहानी सुनाई। वहॉ उपस्थित सुशिक्षित लोग शुक्ल की हिम्मत और संघर्षशीलता के कायल बन गए फिर भी उनमें से कोई चम्पारण जाने को तैयार नहीं हुआ। फिर शुक्ल और उनके साथी लोकमान्य तिलक से मिले, पर वे अपने खराब स्वास्थ के कारण अनुरोध मानने में असर्मर्थ थे। तब वे लोग पं0 मदनमोहन मालवीय की सलाह–मान गाँधीजी के पास गए। महामना ने उनके दक्षिण अफ्रीकी संघषों के बारे में बतलाते हुए कहा था कि किसी तरह यह व्यक्ति चम्पारण जाने को तैयार हो जाए तो वह तुम्हें मुक्ति दिलाकर ही दम लेगा। शुक्ल गाँधीजी से मिले। गाँधीजी की सौम्यता व सादगी से प्रभावित हो, आँखों में आँसू भर राजकुमार शुक्ल उनके चरणों में लेट गए और भरे गले से चम्पारण के जुल्म भरी दास्तान सुनाई और कहा चम्पारण चलकर रैयतों की दशा अपनी आँखों से देखिये, पर उन्होंने तुरन्त हामी नहीं भरी। गांधीजी ने कहा कि वे कानपुर जा रहे है। वहॉ जाकर ही इस बारे में सोचेंगे। क्योंकि जबतक खुद स्थिति की विषमता को मैं अवलोकन नहीं कर लुँगा तब–तक कुछ भी मैं बोलने में असमर्थ हूँ। जब गाँधीजी कानपुर पहुँचे तो पाया कि शुक्ल जी गणेशशंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' कार्यालय में विराजमान है। गाँधीजी ने कहा कि वे कलकत्ता (अब कोलकाता) जा रहे है। जहाँ पहुँचकर इस विषय में कोई निर्णय लेंगे। तो शुक्ल भी 9 मार्च को कलकत्ता पहुँच गये, लेकिन दुर्भाग्यवश गाँधीजी 8 मार्च को ही वहां से निकल चुके थे, फिर शुक्ल 10 मार्च को बेतिया के लिए चल पड़े फिर शुक्ल ने एक तार भेजा, वह तार मिलते ही गाँधीजी ने पुनः एक पत्र शुक्ल को भेजा तथा श्री भुपेन्द्रनाथ बसु के यहॉ आकर मिलने की सूचना दी (कलकत्ता) में। जब गाँधी जी 7 अप्रैल 1917 में कोलकाता अपने मेजबान बैरिस्टर भूपेंन्द्रनाथ बसु के घर पहुँचे तो देखा कि शुक्लजी वहॉ पहले से डेरा डाले हुए है। शुक्ल ने आग्राहपूर्वक कहा कि चम्पारण यहाँ से दूर नहीं है, एक बार चलकर हमारी दशा देख लें। गाँधीजी उनकी निष्ठा के इतने कायल हो गए कि वे उनके साथ 9 अप्रैल को चल पड़े। गाँधीजी ने चलते समय कहा कि अनपढ़

निष्चयमान किसान ने मुझे जीत ही लिया यद्यपि उनको मालूम न था कि चम्पारण कहॉ है। वे शुक्ल के साथ पटना पहुँचे और राजेन्द्र प्रसाद से मिलना चाहा। लेकिन राजेंद्र बाबु तो कलकत्ता अधिवेशन में ही था, वो भी गाँधी के समीप/संयोगवष दोनों में परिचय नहीं होने के कारण, गाँधीजी वहाँ से चले आये थे। राजेन्द्र बाबू के बाहर होने के कारण उनके सेवकों ने गाँधीजी को, वेशभूषा से, कोई देहाती मुवक्किल समझकर ठहरने नहीं दिया (बता दें कि गाँधीजी को यहॉ पर छुआ–छूत का सामना करना पड़ा था।) तब वे अपने विलायत के सहपाठी मजहरूल हक के यहाँ ठहरे। दूसरे दिन गंगा पार कर ट्रेन से मुजफ्फरपुर पहुँचे जहाँ स्थानीय कॉलेज के अपने राष्ट्रवादी विचारों के कारण निलंबित अध्यापक कृपलानी (जो आगे चलकर आचार्य कृपालानी बने) प्रथम श्रेणी के डिब्बें में गाँधीजी को ढूँढते दिखे। उन्हें तब बड़ा आश्चर्य हुआ जब मालुम हुआ कि दक्षिण अफ्रीका में सरकार को हिला देने वाला व्यक्ति तीसरे दर्जे में सफर कर रहा है।

शुक्लजी गाँधीजी को लेकर मोतीहारी पहुँचे। स्टेशन से दोनों पैदल अपना सामान लिए गोरख बाबू वकील के यहाँ गए। वहाँ आराम करने के बाद शुक्लजी ने एक हाथी की व्यवस्था की, जिस पर बैठ दोनो एक गॉव की ओर चल पड़े, जहाँ गाँधीजी किसानों से बातचीत कर स्थिति जानना चाहते थे। याद रहे कि वे स्थानीय बोली–भोजपुरी, बिल्कुल नहीं समझते थे और किसानों में से शायद ही कोई खड़ी बोली हिंदी बोलने में समर्थ था। शुक्ल जी ही उनके पथ प्रदर्शक और दुभाषिया थे। वे कुछ दूर ही गए होंगे कि एक सिपाही दौड़ता हुआ आया और उसने हाथी रूकवाकर गाँधीजी को कलक्टर डब्लू0बी0 हैकॉक का आदेश थमाया, जिसमें कहा गया था कि वे चौबीस घंटे के अंदर जिला छोड़कर चले जाएँ या कल सुवह यानी 17 अप्रैल 1917 को कचहरी आकर बतलाएँ कि वे क्यों नहीं जाना चाहते? गाँधीजी लौटकर मोतिहारी आए, जहाँ रात–भर जागकर लालटेन की रौशनी में कुछ लिखते दिखे।

अगले दिन सुबह तक बिहार के कई नामी वकील आ पहुँचे, जिन्होंने बताया कि आदेश गैर–कानूनी है और इसे साबित करने के लिए क्या–क्या कानूनी दलीलों वे दें। गाँधीजी ने उनकी बातें सुन ली मगर कोई उत्तर नहीं दिया। नियत समय पर कचहरी में हाजिर हुए। तब तक सारे जिले में उनके आने तथा उनके करिशमाई व्यक्तित्व की खबरें फैल गई थी, जिससे सैकड़ों नहीं, हजारों की संख्या में किसान कचहरी परिसर में जुट गए थे। जब गाँधीजी ने कलक्टर के सामने अपना वक्तव्य पढ़ा, तब वह अवाक् हो गया। बिना कोई कानूनी दलीलें दिए उन्होंने बताया कि वे चम्पारण सत्य जानने के लिए आए हैं हम सत्य के अनुयायी है और एक शोषणविहीन समाज चाहते है। जहॉ सत्य दबाया जाएगा और शोषण किया जाएगा वहां में अहिंसा द्वारा सत्य का उद्धार करूंगा और शोषण से मुक्ति दिलाऊँगा। इसके लिए मेरे पास एक ही विश्वनीय अस्त्र है– सत्याग्रह।

और सत्य की खोज पूरी होने पर ही वे अपना अगला कदम तय करेंगे। अगर सरकार उन्हें जबर्दस्ती जिले से बाहर कर देगी तो वे फिर वापस आ जाएँगे, क्योंकि उनके लिए सत्य की खोज सर्वोपरि है। इस वक्तव्य से सरकारी वकील और अफसरों के होश उड़ गए, क्योंकि उनका ख्याल था कि गाँधीजी जैसा बैरिस्टर कानूनी रूप से लचर, सरकारी आदेश की धज्जियां उड़ा देगा। गाँधीजी के अपने मित्र वकील भी चकित हो गए। गाँधीजी के इस बयान से दश भर में तहलका मच गया। बल्लभ भाई पटेल और उनके मित्रों ने जब यह ब्यान अखबारों में पढ़ा तो वे गाँधीजी के साहस और संघर्षशीलता से हक्के–बक्के रह गये। यही से बल्लभ भाई पटेल के मन में गाँधीजी के प्रति आदर भाव बढ़ा जो उनके भावी राजनीतिक जीवन का सूत्रधार सिद्ध हुआ। इसके पहले तो वह गाँधीजी को एक

पुराण–पंथी और हास्यास्पद व्यक्ति से अधिक कुछ नहीं मानते थे (पटेल कहते है कई बार मैंने गाँधी जी के प्रयोगों को लेकर हंसी भी उड़ाया करते थे)

खैर, कलक्टर ने उनसे कहा कि आप तब तक न कुछ कहें और न करें जब तक मैं निर्णय न सुनाऊँ और बाहर जाकर बुलावे की प्रतिक्षा करें। गांधीजी कचहरी परिसर में एक वर के पेड़ के नीचे बुद्ध की तरह बैठ गए। किसानों की भीड़ उनकी जय–जयकार करती रही, पर वे कुछ न बोले। नियत समय पर कलक्टर की ओर से कहलवाया गया कि वे अगले दिन आएँ।

दूसरे दिन 18 अप्रैल को जब वे हाजिर हुए तब बतलाया गया कि सरकार ने अपना आदेश वापस ले लिया है और उनकी सत्य की खोज के लिए सहायता देने को तैयार है। यह पूछने पर कि उन्हें क्या मदद चाहिए, गाँधीजी ने एक मेज और दो कुर्सियों की मांग की। एक पर वे स्वयं बैठेंगे और दूसरी पर उनका दुभाषिया। जब यह पूछा गया कि क्या उनको कोई आपत्ति होगी अगर खुफिया विभाग का कोई व्यक्ति भी उपस्थित रहे? तब गाँधीजी ने कहा कि बिल्कुल नहीं। गाँधीजी ने खुफिया के लिए एक अतिरिक्त कुर्सी के लिए कहा।

ऊपर हमने जो कहा उससे दो बातें उभरती है। पहली, राजनीतिक लड़ाई, राजनीतिक तरीकों से लड़नी चाहिए, मात्र कानूनी दाव–पेंचों से नहीं, क्योंकि तभी उसका व्यापक असर होगा। दूसरी लड़ाई खुली होनी चाहिए, गुप्त तरीकों और षड्यंत्रों के सहारे नहीं। तभी व्यापक जन–सहयोग और भागीदारी का मार्ग प्रशस्त होगा।

अब बैलगाड़ी पर लदकर एक मेज और तीन कुर्सियाँ एक गॉव से दूसरे गॉव जाने लगी और गाँधीजी की, सत्य की खोज, आगे बढ़ने लगी जिससे भारी जन–उभार आया।

गाँधीजी का साथ देने के लिए बिहार ही नहीं बल्कि देश के अन्य भागों से लोग आये। कलकत्ता से राजेन्द्र बाबू भी आ गए थे, राजेन्द्र बाबू कहते हैं कि यह पहला मौका था जब गाँधीजी से मेरा किसी प्रकार का सम्पर्क हुआ। बिहार में जाति–व्यवस्था का दबदबा था। इस वजह से लोग एक–दूसरे के हाथ का खाना खाने से परहेज करते थे। गाँधीजी ने स्पष्ट कर दिया कि यह नहीं चलेगा और सबको एक ही साथ, एक ही रसोईए का बनाया खाना, खाना होगा। उस समय उनके रसोईया बने बत्तक मियां, जिन्हें निल्हों ने तरह–तरह के लालच देकर भोजन में जहर मिलाने के लिए राजी करना चाहा, मगर वह नहीं डिगे। यह बात स्वंय डॉ राजेन्द्र प्रसाद ने 1950 के दशक के प्रारंभ में मोतिहारी स्टेशन के प्लेटफार्म पर बूढ़े बत्तक मियां का परिचय कराते हुए, कही थी। राजेन्द्र बाबू अपनी यात्रा के क्रम में वहाँ आयोजित एक स्वागत सभा में भाषण शुरू करने ही वाले थे कि कुछ दूर पर शोर हुआ। सुरक्षाकर्मी एक बूढ़े व्यक्ति को रोक रहे थे, जिसकी कमर झुकी थी और बाल बिल्कुल सफेद थे। राजेन्द्र बाबू धीरे से मंच से उतरकर उस ओर गए और कुछ देर में उस बूढ़े व्यक्ति को सहारा देकर ले आए। अपने पास, मंच पर बैठाकर भोजपुरी में बातें करते रहे। फिर बत्तक मियां का परिचय कराते हुए राजेद्र बाबू ने बतलाया कि यदि मियां लालच में आकर खाने में जहर मिला देते तो आप कल्पना करें कि क्या होता, गाँधीजी समेत हम सबका और आजादी की लड़ाई का। गाँधीजी के सहयोगियों में शेख गुलाब और पीर मोहम्मद मूनिस भी थे, जिन्हें अलग करने के लिए निलहों ने लालच से लेकर, भय दिखाने तक का प्रयास किया, किन्तु वे नहीं डिगें। हिन्दू–मुस्लिम वैमनस्य पैदा करने तथा दंगा करवाने के निष्फल प्रयास हुए। मूनिस एक शिक्षक थे मगर अंग्रेज उन्हें गुंडा बता, पुलिस के चुंगल में फँसाने की असफल कोशिषें करते रहे। मुनिस का जिक्र राहुल सांस्कृत्यायन ने अपनी पुस्तक ''मेरे असहयोग आंदोलन के साथी'' में विस्तार से किया है। वे एक अच्छे लेखक ओर साहित्य–प्रेमी थे।

गाँधीजी को चम्पारण लाने वाले राजकुमार शुक्ल के घर को निलहो ने जला दिया। यह बात मालूम होते ही गाँधीजी मीलों पैदल चलकर वहॉ पहुँचे, जिससे शुक्ल के परिवारजनों और गाँववासियों का भय खत्म हुआ और जुल्म के खिलाफ लड़ने के लिए नए साहस का संचार हुआ। गाँधीजी ने एक रात वहीं बिताई। गाँव वालों के साथ भोजन किया और भूसे के बिस्तर पर सोएं।

जिले में गाँधीजी ने कई आश्रम कायम किए जहाँ शिक्षा और स्वास्थ संबंधी जानकारी देने तथा दस्तकारी के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। वे स्वयं जहाँ जाते वहाँ सफाई कार्य करते थे, जिससे गाँव वाले उनका अनुशरण करने को प्रेरित होते थे। गाँधीजी का चम्पारण में गरीबी से सीधा सामना तब हुआ, जब उन्होंने एक महिला से कस्तूरबा की मार्फत पता करवाया कि वह साफ.–सफाई से क्यों नहीं रहती ? महिला ने बतलाया कि उसके पास एक ही साड़ी है। यहि दूसरी साड़ी की व्यवस्था हो जाए तो वह साफ–सफाई से जरूर रहेगी। यही से गाँधीजी के मन मे चरखे के विकाश के लिए प्रतिज्ञावध हुए थे।

यह श्रेय गाँधीजी को जाता है कि उन्होंने जिले के पढ़े–लिखे लोगों से लेकर निरक्षरों, धनी जमींदारों से लेकर भूमिहीन,मजदूरों और सवर्णों से लेकर दलितों तक को एक साथ लाकर उनमें चट्टानी एकता बनाई, जिसके आगे निलहों तथा अंग्रेजी शासन को झुकना पड़ा और इस प्रकार चंपारण के किसानों पर से एक सौ वर्षों से जो जुल्म ढहाई जा रही थी उसका अंत हो गया।

एक बात और ध्यान देने योग्य है कि गाँधी को दलित का एक अर्थ उन्हें चंपारण (बिहार) के किसानों में निलहें जमींदारो में दिखाई पड़ा। यह देख गाँधीजी की छाती फट गई, दलित की पीड़ा को दक्षिण अफ्रिका के रंग–भेद से पिड़ित भारतीयों तथा गिरमिटिया मजदूरों की यातना को देखकर समझ चुके थे। गाँधीजी को छुआ–छूत की भेद–भाव राजेन्द्र बाबू के यहाँ भी देखने के लिए मिल गया था। चम्पारण में नव चेतना के संदर्भ में एक उदाहरण राजेन्द्र बाबु के संदर्भ मेंः–''जब हमलोग पहले पहल चम्पारण पहुँचे तो हममे अनेकों के साथ नौकर थे, रसोई बनाने के लिए एक रसोइया था। थोड़े ही दिनों में गाँधीजी के अनुसार नौकरों और रसोईयों को हटा दिया गया। फल इसका यह हुआ कि जिन लोगों ने अपने जीवन में एक लोटा जल कुएँ से नहीं निकाला था अथवा जिन्होंने नहाकर एक गमछा भी नहीं धोया था, उन्हीं लोगों ने महात्मा जी के सत्संग में थोड़े दिनों में ही एक दूसरे को नहला देने, कपड़ा धो देने तथा जुठे बर्तनों को साफ करने का संकोच छोड़ दिया।

हमलोग यह सब काम स्वयं कर लेते थे, झाड़ू लगाना, चौका साफ करना, स्टेशन या बाजार से गठरियों को लाना ये सब काम हमलोग स्वयं कर लिया करते थे। राजेन्द्र बाबू कहते है कि चंपारण में हमारे जीवन पर भी बहुत गहरा असर पड़ा वहीं हम लोगों ने जाँत–पाँत का भेद छोड़ा। उस समय तक मैं जाति भेद–भाव को बहुत मानता और बरतता था। दुसरी बात मैं गाँधीजी से सीखा कि कहीं जाना हो तो रेल के तीसरे दर्जे में सफर करना और जहाँ तक हो सके, पैदल ही चलना– सब कुछ वहाँ हमने गाँधीजी से सीखा। चंपारण में जो विजय मिली, उसके बाद गाँधीजी ने चंपारण के तीन हिस्सों में तीन स्कूल खोलें। सारे सूबे में एक नया जीवन आ गया। चम्पारण सत्याग्रह के इतिहास को देखकर निश्चित रूप से यह समझ लेना चाहिए कि गाँधी का अठारह रचनात्मक कार्यक्रम जो है वह यहीं से प्रारंभ होता है। एक बात और ध्यान देने योग्य है कि यह सत्याग्रह महज एक राजनीतिक आंदोलन नहीं था वह समाज के आत्मसम्मान का भी आंदोलन था जिसे संयोग से गांधीजी का कुशल नेतृत्व भी मिल गया। यह पहला आंदोलन था जो कांग्रेस की पारंपरिक राजनीतिक से अलग था और जमीन से उठा था।

गाँधीजी के जीवन में एक घटना यीशु की तरह घटी

चम्पारण की एक घटना पर रोमां रोला ने 6 अक्टुवर 1932 को अपने एक संदेश में गाँधी को भारत का मसीहा कहते हुए लिखा है कि :–

चम्पारण में एक किसान लाठी से पिटाई में मारा गया तो उसकी माँ गाँधीजी के पास आकर उसे जिंदा कर देने की गुहार लगाई। यह देखकर गाँधी गंभीर थे, उन्होंने कहा इसे मैं कैसे जीवित करूं– मेरे पास ऐसा सामर्थ्य कहाँ है (यीशु मसीह के जैसा) लेकिन मैं तुझे दूसरा बेटा दे सकता हूँ और अपने को उसका बेटा मान कहने लगे कि लो मुझे अपना बेटा मान लो और दोनों गले लगकर खुब रोते रहे।

संदर्भ :

1. अंतिम जन, मासिक पत्रिका (राजघाट नई दिल्ली) संख्या–13, फरवरी–2013
2. राजेन्द्र बाबू की आत्मकथा, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन।
3. सर्वोदय जगत– 16–31, दिसम्बर–2017
4. रचनात्मक कार्यक्रम–गाँधीजी, नव जीवन प्रकाशन, अहमदाबाद।
5. महात्मा गाँधी जीवन और दर्शन, रोमा रोला, (अनुवाद–प्रफुल चन्द्र ओझा) लोक भारतीय पेपरबैक्स।
6. सरदार बल्लभ भाई पटेल–राजवीर सिंह दार्शनिक (पी0एम0 पब्लिकेशन)।
7. चम्पारण में बापू–बज्र किशोर सिंह (सदस्य, विधान परिषद् पटना) जानकी प्रकाशन–नई दिल्ली।